© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS
Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 09 , Issue : 03 | April - June 2023

"एकात्म मानववाद का विकास क्रम, नामकरण व समाजशास्त्रीय प्रवृतियां"

डॉ0 दर्शना देवी,
सहायक प्राध्यापिका (राजनीतिशास्त्र)
साऊथ पुआइण्ट डिग्री कॉलेज,
रत्नगढ़–बागडू, सोनीपत।

शोधसार :–
इस **शोधपत्र** में एकात्म मानववाद का विकास क्रम, नामकरण व समाजशास्त्रीय प्रवृतियां का वर्णन किया गया है।

मुख्य शब्दः–पुनरूत्थान, राष्ट्रवादी, संस्कृति, समाजवाद, पूंजीवाद, केन्द्रीयकरण

एकात्म मानववाद का विकास–क्रम

'एकात्म मानववाद की अवधारणात्मक का विकास, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा स्वीकृत' शुद्ध राष्ट्रवाद' की धारणा से होता है। भारतीय संस्कृति जो कि हिन्दू संस्कृति है, कांग्रेस द्वारा प्रतिपादित मिश्रित राष्ट्रवाद तथा पाश्चात्य वैचारिक दर्शन की प्रतिक्रिया से भी उत्पन्न हुई। दीनदयाल उपाध्याय इसके विचारक और संगठक बने।

भारतीय जनसंघ के प्रथम अधिवेशन दिसम्बर, 1952 में सांस्कृतिक पुनरूत्थान विषयक प्रस्ताव दीनदयाल उपाध्याय ने रखा था।[1]यह प्रस्ताव एक प्रकार से 'हिन्दू राष्ट्रवादी' प्रस्ताव है। भारतीय संस्कृति के आधार पर भारतीय जनसंघ की अर्थनीति का प्रारूप उपाध्याय जी ने जनसंघ के उत्तरप्रदेश के प्रादेशिक सम्मेलन के अवसर पर आयोजित कार्यकर्ता शिविर में सन् 1953 में पहली बार प्रस्तुत किया था।[2] सन् 1958 में हुए भारतीय जनसंघ के अधिवेशन में समाजवाद व पूंजीवाद पर खुले रूप से प्रहार किए गए। कहा गया था कि, समाजवाद व पूंजीवाद, दोनों ही शक्ति के केन्द्रीयकरण के विदेशी विचार हैं, जनसंघ विकेन्द्रीकरण व भारतीयता का उपासक है।

अपनी इस नीति पर उपाध्याय जी ने भाषण 19 मार्च, 1959 को लखनऊ में गंगाप्रसाद स्मारक हाल में दिया था। इसमें पश्चिमी विचारों का खण्ड़न करते हुए 'विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था तथा 'मानववाद' का पक्ष प्रस्तुत किया गया था।[3] इस भाषण में अपनी विचारधारा के लिए उन्होंने 'मानववाद' शब्द का प्रथम बार प्रयोग किया था जो कि सामाजिक व आर्थिक 'यंत्रवादी' विचार के प्रतिकार में प्रतिपादित किया गया था। इसके बाद 2 जनवरी 1961 के पाञ्जन्य में उपाध्याय ने 'समाजवाद, लोकतंत्र अथवा मानववाद' शीर्षक से एक लम्बा लेख लिखा था।[4] लेकिन तब तक शायद अपनी विचारधारा का निरूपण 'मानववाद' शब्द से ही किया जाये, जब यही लेख उनकी पुस्तक 'राष्ट्र–चिंतन' में संकलित होकर आया था तो शीर्षक बदलकर 'समाजवाद' लोकतंत्र और हिन्दुत्ववाद' का दिया गया था।[5] अतः 11 अगस्त से 15 अगस्त 1964 को सम्पन्न हुए भारतीय जनसंघ के ग्वालियर प्रशिक्षण शिविर में उपाध्याय जी द्वारा जो 'सिद्वांत और नीति' प्रलेख प्रस्तुत किया गया था, जिसमें अपनी दल की विचारधारा को 'एकात्म मानववाद' के नाम से अभीहित किया गया।[6] 22 से 25 अप्रैल 1965 को उपाध्याय जी की भारतीय जनसंघ बम्बई द्वारा एक भाषणमाला सम्पन्न करवाई गई थी, जिसमें उन्होंने विस्तारपूर्वक अपने विचारदर्शन का विवेचन किया था।[7]फरवरी, 1968 में उपाध्याय की हत्या हो गई और इस प्रकार से विचार का यह क्रम आगे नहीं बढ़ सका।

इस वैचारिक विकासक्रम में सर्वाधिक योगदान राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के शिक्षावर्गो में उपाध्याय जी द्वारा दिए गए बौद्विक वर्गो का है, लेकिन उनमें व्यवस्था एवं क्रमबद्वता का अभाव है।[8] तुलनात्मक रूप से भारतीय जनसंघ के माध्यम से प्रलिखित व विश्लेषित हुई सामग्री अधिक व्यवस्थित व क्रमबद्ध है।

© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS
Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 09 , Issue : 03 | April - June 2023

गांधी जी और विनोबा जी का साहित्य तथा तकनीकी शब्दावली के लिए उन्हें 'दैशिक शास्त्र' से बहुत सहयोग प्राप्त हुआ। इस सब धोलमेल से जो एक नवरसायन तैयार हुआ, वह 'एकात्म मानववाद' उपाध्याय जी की अपनी मौलिक प्रतिभा का परिणाम था।[9]

4 एकात्म मानववाद का नामकरण :–

'एकात्म मानववाद' नाम से जाने गए इस विचार को अन्य भी अनेक नामों से उपाध्याय व उनके साथी पुकारते रहे। 'एकात्मतावाद' 'समन्वित मानववाद', सम्पूर्ण मानव' 'समग्र मानव का विचार' आदि। उपाध्याय जी ने अपने संघ शिक्षा वर्ग के एक बौद्धिक वर्ग में इसे 'षटपदीवाद' भी कहा था। उन्होंने अपने 'सिद्धांत और नीति' प्रलेख को ही अपने विचारों की अभिधारणा के लिए अधिकृत किया। अतः अंतिम रूप से 'एकात्म मानववाद' नाम को मान्यता प्राप्त हुई।

'एकात्मता' भारतीय संस्कृति का केन्द्रीय विचार है। वस्तुतः उपाध्याय का विचार 'एकात्मता दर्शन' है, लेकिन वह 'मानव' के लिए है। मानव को पश्चिमी प्रतिक्रिया ने ईश्वर के खिलाफ प्रस्तुत किया तथा बाद में उसे यंत्रवत् व्याख्यायित कर दिया। उपाध्याय जी मानव को ईश्वर के खिलाफ नहीं, यत्रवत भी नहीं, बल्कि एक स्वयंपूर्ण एवं संवेदनशील इकाई के नाते प्रस्तुत करना चाहते थे। इसी पाश्चात्य संदर्भ के कारण उन्होंने 'बाद' शब्द को अपनाया। 'एकात्मता' तत्व 'मानव' तथा 'बाद' दोनों को भारतीयकृत करता है।

5 एकात्म मानववाद का जीवन–दर्शन

'एकात्म मानववाद' विचारदर्शन ने मानव की व्यष्टि तथा विभिन्न सामुदायिक समष्टियों के परस्पर सम्बन्धों के बारे में दत्तोपंत ठेंगडी जी कहते हैं कि, ''पश्चिम में सभी इकाइयों, संस्थाओं एवं कल्पनाओं का विचार अलग–अलग आधार पर किया जाता है।''

पश्चिम की यह रचना सकेन्द्रीय है। इसमें व्यक्ति केन्द्र बिन्दु है। अब उससे सम्बन्ध न रखते हुए अन्य घेरे परिवार समुदाय, राष्ट्र और मानवता के है। ये एक दूसरे को आवृत अवश्य करते है परंतु एक दूसरे से अलग है और एक दूसरे से निर्गमित नहीं होते। भारत की सनातन रचना है। इसे अखण्ड़ मण्डलाकार रचना कहा जाता है। इसका प्रारंभ व्यक्ति से होता है और व्यक्ति को लेकर व्यक्ति के सबंध न तोड़ते हुए, उसी से सम्बद्धता कायम रखते हुए, अगला घेरा परिवार का है। उसे खण्ड़ित न करते हुए, उसी से सम्बद्ध दूसरा घेरा राष्ट्र का है। उससे ऊपर का घेरा मानवता का है।[10]

ठेंगडी इन दोनों रचनाओं के अंतर को इस प्रकार विवेचित करते है कि पश्चिमी विचार के अनुसार हर सामुदायिक इकाई एक दूसरे का आवृत तो करती है परन्तु परस्पर असम्बद्ध है। इसलिए हर इकाई का हित–चिंतन एकांति है। अतः इसमें हित–विरोध व निरंकुशता आती है, जबकि भारतीय जीवन–रचना व्यक्ति एवं समाज की विभिन्न इकाईयों में परस्पर सम्बद्धता के परिणामों से यह विकसित समाज चेतना है। व्यक्ति बिन्दु का विकास ही मानवता तक के मण्डलाकार जीवन प्रक्रिया से हुआ है। इस अवधारणा के अनुसार जो जीवन दृष्टि सम्बन्धी निष्कर्ष निकाले गए हैं वे निम्न हैं–

1 व्यक्ति विभिन्न सामाजिक ईकाइयां परस्पर अविच्छिन्न है। इनमें पृथकता देखने वाली जीवन दृष्टि गलत है।

2 व्यक्ति से मानवता तक की सामजिकता एक विकास–क्रम का परिणाम है। इस विकास चेतना की अवहेलना में से आरोपण एंव निरंकुशता की मनोवृति उत्पन्न होती है।

3 व्यक्ति तथा समाज के हित परस्पर विरोध नहीं वरन पूरक है। व्यक्ति व समाज की पृथकतामूलक अवधारणा ने संघर्ष एवं स्पर्धामूलक मनोविज्ञान विकसित किया है।

4 पारस्परिक सम्बद्धता का मनोविज्ञान भाषण व उत्पीड़न का निषेध करता है, परमार्थ व स्वार्थ में अभेद उत्पन्न करता है।

5 व्यक्ति से मानवता तक की चेतना का विकास एवं मानवीय प्रक्रिया है जो सांस्कृतिक है जबकि असम्बद्ध इकाइयों को कृत्रिम व्यवस्थाओं से जोड़ने के प्रयत्न से व्यवस्थावाद, जो कि अन्ततः 'राज्यवाद' के रूप में परिभाषित होती है, उसकी प्रधानता हो जाती है। यांत्रिक सम्बद्धताओं की प्रक्रिया मानव की सहज संवेदनशीलता को आहत करती है।

6 सकेन्द्री जीवन–रचना खण्ड–खण्ड मानव का दर्शन है जबकि अखण्ड़ मण्डलाकार एकात्म मानव का।

व्यक्ति व समाज के सम्बन्धों के आधार पर उनकी आवश्यकता एवं कार्यशीलता का एक रेखाचित्र पं. दीनदयाल उपाध्याय प्रस्तुत करते हैं। जिसमें व्यक्ति तथा समाज के सब तत्व व्यक्ति और समाज तथा समाज एवं व्यक्ति को जोड़ने वाली क्रियाएं एवं इस क्रियाशील सम्बद्धता के परिणामस्वरूप सिद्ध होने वाले चतुर्पुरूषार्थ का दिग्दर्शन है।[11]

6 एकात्मक मानववाद की समाजशास्त्रीय प्रवृतियाँ :–

पं0 दीनदयाल उपाध्याय भी अपने विचारों की वैज्ञानिकता को प्राकृतिक साक्ष्यों से पुष्ट करते हैं। उनकी साक्षियां भौतिक विज्ञान, वनस्पति विज्ञान, जीव विज्ञान, समाजशास्त्र व मनोविज्ञान आदि सभी शास्त्रों में से जुटाई गई है। भारत का प्राचीन विज्ञान विश्लेषण भी उनकी अभिधारणाओं का आधार है। प्राकृतिक सत्यों के रूप में उपाध्याय जी जिन एकात्म मानववादी प्रवृतियों को विश्लेषित करते हैं, उन्हें निम्न प्रकार वर्णित किया गया है।

(क) एकात्मता :– भारतीय दार्शनिकों की यह पुरानी मान्यता है। 'अंश' 'सम्पूर्ण' तत्वत एक है।[12] सम्पूर्ण चराचर जगत में एकात्म भाव की अवधारणा भारतीय दर्शन की विशेषता है। वटवृक्ष विराट है, बीज सूक्ष्म है। बीज अपनी सम्पूर्ण विशालता सहित समाया हुआ है और सूक्ष्म बीज विशाल वृक्ष बन जाता है। जो सूक्ष्म है वही विराट है जो विराट है, वही सूक्ष्म भी है। अतः सूक्ष्म और विराट, व्यष्टि एवं समष्टि तथा मनुष्य एवं समाज में द्वंद्व नहीं है एकात्म भाव है, जो जीवन को टुकडों में नहीं बाँटता। यह खण्ड़ दृष्टि नहीं, अपितु समग्र दृष्टि प्रदान करता है।''[13]

पं0 दीनदयाल उपाध्याय वृक्ष व बीज में एकात्मता देखकर सामाजिक एकात्मता जो कि 'द्वद्ववाद' का निषेध कर 'समन्वय' का प्रतिपाद करते है, उसका निरूपण करते है। बीज तथा वृक्ष में अभेद देखते है। कार्ल मार्क्स के अनुसार बीज 'वाद' है, प्रस्फटन 'प्रतिवाद' है और वृक्ष 'समवाद' है। तदनुसार पूँजीवाद 'वाद' वर्गसंघर्ष प्रतिवाद व समाजवाद 'समवाद' है। मार्क्स ने कहा है कि, ''वाद'' व ''समवाद'' क्रान्तिकारी रूप से व तत्वतः भिन्न होते हैं, पूंजीवाद से एकदम भिन्न वस्तुत है 'समाजवाद'। मार्क्स वैसे प्रतिभा सम्पन्न विचारक थे, लेकिन यहाँ उने तर्क की भूल हुई है, क्योकि 'बीज' और 'फल' तत्वतः भिन्न वस्तुएं नहीं है। वृक्ष या फल बीज का ही विस्तार है। पूंजीवाद रूपी बीज या फल 'समाजवाद' कैसे होगा, यदि समाजवाद, पूंजीवाद से प्रकृति भिन्न है ? अतः बीज और वृक्ष की प्रक्रिया में संघर्ष नहीं, 'विकास' की गवाही है। इस तर्क की अधिक विवेचना भी की जा सकती है लेकिन यह एक सुखद संयोग है कि दीनदयाल व मार्क्स दोनों ने अपने परस्पर विरोध माने जाने वाले दर्शनों के पक्ष में प्रकृति के एक ही गवाह को साक्षी के लिए प्रस्तुत किया।

(ख) समग्रता :–प्रकृति का अर्थ ही है। संतुलित समग्र। सामाजिक समग्रता की दृष्टि व विवेकसंगत आयोजन से, समाज में परस्पर संतुलन स्थापित किया जा सकता है। इसी प्रकार प्रकृति के साथ व्यवहार करते समय भी समग्रता व संतुलन का ध्यान रखना आवश्यक है। अपनी तात्कालिक कागज, फर्नीचर व ईधन की आवश्यकता की पूर्ति के लिए हम जंगल काटते हैं। इससे पर्यावरण में अंसुतलन आता है। अतः एकपक्षीय एक आयामी तात्कालिक व केवल उपभोगवादी दृष्टि अवांछनीय है। प्रकृति हमें समग्रता व

संतुलन का संदेश देती है। इसलिए भारतीय विचार प्रकृति से मातृवत व्यवहार का निर्देश देता है तथा उपभोग में 'संयम' के नियम का पालन करने का आग्रह करता है।

उपाध्याय जी ने कहा है कि, ''प्रकृति की सम्पदा अपार होते हुए भी उसकी मर्यादा हें अतः हम प्रकृति से उतना तथा इस प्रकार ले, कि वह कमी को पुनः स्वयं पूरित कर लें। पश्चिम का उद्योगवाद, एकांगी होने के कारण ही यांत्रिक व अमानवीय होकर, प्रकृति के लिए सहारक बन गया है। समग्रतावादी अर्थव्यवस्था प्रकृति के शोषण पर नहीं, पोषण पर अवलम्बित होगी। शोषण नहीं, दोहन हमारा आधार होना चाहिए। प्रकृति का स्तन्य हमारे लिए जीवनदायी हो, ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए। प्रकृति के साथ 'समग्रता एवं संतुलन का व्यवहार दूरदर्शिता का परिचायक है। एकात्म मानवाद की द्वितीय प्रवृतिमूलक अभिधारणा 'समग्रता' है।

(ग) पूरकता :– दीनदयाल उपाध्याय जी ने कहा है कि, ''पश्चिमी दार्शनिकों ने डार्विन के जीवशास्त्रीय सिद्धांत शक्तिशाली ही जीवित रहेगा का समाजीकरण करके मनुष्य को गलत दिशा दी है। प्रकृति में यत्र–तत्र संघर्ष के उदाहरण भी है, लेकिन हमें उसमें समन्वय की खोज करनी चाहिए, क्योंकि हमारे अस्तित्व का कारण संघर्ष नहीं, बल्कि परस्परावलम्बन व पूरकता है। वनस्पति और प्राणी, दोनों एक–दूसरे की आवश्यकता को पूरा करते हुए ही जीवित रहते है। हमें ऑक्सीजन वनस्पतियों से मिलती है तथा वनस्पतियों के लिए आवश्यकता कॉर्बनडाइआक्साईड प्राणी–जगत से प्राप्त होती है। इस परस्पर पूरकता के कारण ही संसार चल रहा है।''

इस प्रकार उपाध्याय केवल प्रकृतिवादी नहीं थे। उपाध्याय संस्कृतिवादी भी थे। संस्कृति कभी प्रकृति के प्रतिकूल नहीं होती, लेकिन प्रकृति का अन्धानुगमन भी नहीं करती। अतः उनके अनुसार प्रकृति में संघर्ष के उदाहरण भी है यह मानते हुए भी प्रकृति की मूल प्रवृति पूरकता व 'परस्परवलम्बन' की है इसको पहचानने का आग्रह किया। 'अंधे और लगड़े' को जोड़ो। पूरकता पैदा करो, यही दैवी भाव है।[14] हमें प्रकृति के 'पूरकता' संदेश को सामाजिक व्यवस्था का आधार बनाना चाहिए। इसी से समाज में निरंतरता व सौख्य का निर्माण संभव है।

आत्मीयता :–बंधुता का आधार सहानुभूति व आत्मीयता होती है जो 'जड़वाद' के आधार पर अनुभूत नहीं की जा सकती। एकात्म मानववाद की व्याख्या के दौरान उपाध्याय जी ने कहा था कि, ''स्वतंत्रता, समानता व बंधुता एक ही तत्व में अंतर्निहित है, जिसे 'आत्मीयता' कहते हैं। मानव की आध्यात्मिक चेतना ही उसे समग्रता व पूरकता की दृष्टि देती है, इस दृष्टि का वेतन तत्व है, 'आत्मीयता'। हम किसी का 'पूरक' बनकर उस पर अहसान नहीं करते, बल्कि अपने 'आत्मीयजन' के सहयोग का सुख प्राप्त करते है। 'सहानुभूति' मानवता का गुण है, आत्मीयता के कारण सहानुभूति होती है।''

प्रकृति, व्यक्ति तथा समाज के सहज सत्यों के विषय में वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक तथा समाजशास्त्र के सत्यों के निष्कर्ष पर उपाध्याय जी ने 'एकात्म मानववाद की अन्तर्निहित प्रवृतियों को विवेचित किया। एकात्मता, समग्रता, पूरकता तथा आत्मीयता की अभिधारणाओं में वे सत्य के दर्शन करते हैं। 'जड़वाद' के अधिठान पर रचित संघर्ष, स्पर्धा, स्वतंत्रता, समानता व बंधुता की पृष्ठभूमि पर ही उपाध्याय जी ने अपनी एकात्मतावादी अभिधारणाओं का वर्णन किया है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि दीनदयाल उपाध्याय जी के अतिरिक्त एम0 एन0 रॉय के चिंतन में भी 'नव–मानववाद' अवधारणा मिलती है, नव–मानववाद के सर्वांग विवेचन के अभाव में इन दोनों की तुलना यहाँ करना संभव नहीं है। लेकिन तुलना भारतीय चिंतन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण योगदान होगी। अतः वह स्वतंत्र रूप से की जानी चाहिए।

समीक्षा –'एकात्म मानववाद' कोई नवीन 'वाद' नहीं है यह प्राचीन भारतीय संस्कृति की, नवीन वैश्विक विचार प्रवाह के संदर्भ में, एक युगानुकूल व्याख्या है। भारतीय जनसंघ के जिस ऐतिहासिक प्रशिक्षण

शिविर में इस अवधारणा को प्रथम बार प्रस्तुत किया गया था, तब कहा गया था कि भारतीय जीवनदर्शन की युगानुकूल व्याख्या करने का यह अभिनव प्रयास है। यह न केवल भारतीय संस्कृति का युगानुकूल विवेचन है बल्कि वैश्विक विचारों के लिए 'पूरक' भारतीय चिंतन है। एकात्म मानववाद का विचार प्रचलित वादों में न्यूनताओं को दूर कर उन्हें परिपूर्ण बनाने के लिए गया है।[15]

'अपने विचार का विवेचन प्रारंभ करते हुए जो समस्या उपाध्याय जी ने रखी थी वह थी कि पश्चिम के सभी अच्छे विचारों का, ''जो कि मानव की दैवी प्रवृतियों में से जन्मे हैं, इनमें परस्पर तालमेल का अभाव है। यह 'तालमेल कैसे बैठाया जाये। अतः पश्चिम के विचारों का निषेध उपाध्याय का लक्ष्य नहीं था बल्कि उनको भारतीय मूल्यों से मण्ड़ित करते हुए सामंजस्य के साथ प्रस्तुत करने का लक्ष्य था। उपाध्याय मानव की वैचारिक विकास यात्रा में भारत के सार्थक योगदान के आकांक्षी थे।

यूनान के प्राचीन ज्ञान तथा आधुनिक यूरोपीय विज्ञान ने इसको समृद्ध किया। पश्चिम का विचार कोई एक व्यक्ति एक देश तथा एक लघु काल में विकसित विचार नहीं है। वैज्ञानिकों समाजशास्त्रियों राजनीतिज्ञों व राजनेताओं की एक सुदीर्घ मालिका ने इस विचार को समृद्व किया। चार सौ वर्ष का लम्बा इतिहास इससे जुड़ा है।

कोपरनिक्स, गैलिलियो, न्यूटन, डार्विन जैसे वैज्ञानिक कोलम्बस जैसे साहसिक यात्री नीत्शे, दान्ते व शेक्सपियर जैसे साहित्यकार, कनिंघम, मेक्सवेबर, केलविन, एडम स्मिथ, कीन्स, गैलब्रेथ तथा शूमाकर जैसे अर्थशास्त्री, मैजिनी, मुसोलिनी, लिंकन, लेनिन, हिटलर, स्टालिन, क्रुश्चेव, जिलास व एटली जैसे राजनेता, मेकियावेली, पेटरार्च बेकन, पेस्कल, मोन्टेसक्यू, वाल्टेयर, एरैसमस हॉब्स, लॉक, रूसो, कान्ट, हेगेल, पेलोखनोव, ऑगस्ट कॉटे, कार्ल मार्क्स, जॉन स्टुअर्ट मिल, हेराल्ड जे0 लॉस्की, टी0 एच0 ग्रीन, बर्ग एवं बरट्रेन्ड रसेल जैसे विचारकों की यह मालिका, बहुत समृद्ध एवं सशक्त है। अब भी 'लोक कल्याणकारी राज्य तथा 'नव वाम' के विभिन्न प्रयोग चल रहे हैं। चिंतन, प्रयोग व विश्लेषण के एक सतत् चक्र में से पश्चिम के विचार रूपायित हुए हैं। संघर्ष व समन्वय के जिस आयाम को उपाध्याय जी ने उजागर किया है वह पश्चिम में अजाना नहीं है। 'लोकतांत्रिक समाजवाद' जैसी अवधारणाओं का विकास एवं वांछित तालमेल का ही प्रयास है। आर0 एच0 टवान, ई0 एफ0 एम0 डार्विन, फ्रेडिक पोलक, फ्रेनिक्स विलियम तथा नॉर्मन जैसे विचारक इस समस्या का गहरा विश्लेषण प्रस्तुत कर चुके हैं। इसी पूरी परम्परा के समानान्तर एशिया या भारतीय परम्परा का प्रतिनिधित्व किसी एक व्यक्ति के प्रयत्न द्वारा नहीं किया जा सकता। दीनदयाल उपाध्याय जी अपने 'एकात्म मानववाद' के लिए ऐसा दावा प्रस्तुत भी नहीं करते।

एकात्म मानव की ऐतिहासिक व तात्विक पृष्ठभूमि, जिसका संदर्भ पाश्चात्य व भारतीय विचार है, उसके विषय में उपाध्याय जी ने प्रांरभिक तौर पर एक आधारभूत कार्य किया है। उसके विकास का दायित्व आनेवाली पीढ़ी को लेना होगा। एकात्म मानववाद का तात्विक है सार। उपाध्याय जी ने संक्षेप में कहा था कि, ''हमारी सम्पूर्ण व्यवस्था का केन्द्र 'मानव' होना चाहिए। जो 'यत् पिण्ड़े तत् ब्रह्माण्डे' के न्याय के अनुसार समष्टि का जीवमान प्रतिनिधि एवं उसका उपकरण है।

उपसंहार

भौतिक उपकरण मानव के सुख के साधन है, साध्य नहीं। जिस व्यवस्था में भिन्न रूचि लोक का विचार केवल एक औसत मानव अथवा शरीर, मन, बुद्धि व आत्मायुक्त अनेक ऐषणाओं से प्रेरित पूर्ण मानव के स्थान पर एकांगी मानव का ही विचार किया जाये, वह अधूरी है। हमारा आधार एकात्म मानव है, जो एकात्म समष्टियों का एक साथ प्रतिनिधित्व करने की क्षमता रखता है। 'एकात्म मानववाद' के आधार पर हमें जीवन की सभी व्यवस्थाओं का विकास करना होगा।''[16]

© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS
Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 09 , Issue : 03 | April - June 2023

संदर्भ

1 भारतीय जनसंघ घोषणाएं व प्रस्ताव भाग–4 आंतरिक प्रश्नों पर प्रस्ताव, 52.25 सांस्कृतिक पुनरूत्थान (31 दिसम्बर, 1952 कानपुर, पटना सा0 अ0) पृ0 25

2 भारतीय जनसंघ की अर्थनीति–भारतीय जनसंघ उत्तर प्रदेश के प्रादेशिक सम्मेलन, 1953 के अवसर पर कार्यकर्ता शिविर के लिए दीनदयाल उपाध्याय द्वारा भेजा गया लेख। पृ0 19

3 पाञ्चजन्य 30 मार्च 1959 'विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था से ही मानव मूल्यों की रक्षा' महामंत्री दीनदयाल उपाध्याय (19 मार्च लखनऊ, गंगा प्रसाद स्मारक हॉल में भाषण), पृ0 21

4 पाञ्चजन्य 2 जनवरी 1961, समाजवाद, लोकतंत्र अथवा मानववाद–दीनदयाल उपाध्याय, पृ0 21

5 दीनदयाल उपाध्याय, 'राष्ट्र–चितंन' समाजवाद लोकतंत्र और हिन्दुत्ववाद, पृ0 69

6 पाञ्चजन्य 24 अगस्त 1964, भारतीय जनसंघ प्रशिक्षण शिविर में भारतीय जीवनदर्शन की युगानुकूल व्याख्या प्रस्तुत करने का अभिनव प्रयास (सिद्वांत और नीति) पृ0 7

7 'एकात्म दर्शन दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली (इस पुस्तक में दीनदयाल उपाध्याय के बम्बई में दिए गए चार भाषण, एक भाषण मा0 स0 गोलवलकर (गुरू जी) तथा एक भाषण दतोपंत ठेंगड़ी का संकलित है)। इन भाषणों को 'एकात्म मानववाद' नामक पुस्तिका में भारतीय जनसंघ ने भी प्रकाशित किया है।

8 इस संदर्भ में राजस्थान संघ शिक्षा वर्ग में दिए गए दिसम्बर 4 व 5 जून, 1964 का बौद्विक वर्ग सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

9 महेश वर्मा पृ0 416

10 दत्तोपत ठेंगडी, एकात्म मानववाद : एक अध्ययन, पृ0 27–29

11 बौद्विक वर्ग पंजिका, राजस्थान, बौद्विक वर्ग 5 जून 1964 (उदयपुर)

12 आर0 सी0 पाण्डेय, अध्यक्ष, दर्शन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा दीनदयाल शोध संस्थान में आयोजित कार्यशाला 'एकात्म मानववाद' के विविध आयाम 12–13 फरवरी 1971 के उद्घाटन समारोह पर भाषण से पृ0 3–4

13 मुरली मनोहर जोशी द्वारा दीनदयाल शोध संस्थान में आयोजित दीनदयाल जयंती पर 25 सितम्बर, 1974 को दिए गए भाषण से लिया गया। पृ0 3

14 राजस्थानः संघ शिक्षा वर्ग में दिया गया भाषण 4 जून 1964 का बौद्विक वर्ग पृ0 6

15 दतोपन्त ठेंगडी, एकात्म मानववाद : एक अध्ययन, पृ0 8

16 भारतीय जनसंघ घोषणाएं व प्रस्ताव, भाग–1 'सिद्वांत और नीतियां, पृ0 12